आओ बौद्धिक विमर्श करें

मित्रों,

कतिपय कारणों से वॉइस ऑफ ओबीसी का यह अंक आपके हाथों में काफी विलम्ब से पहुंचा है। संपादन मंडल की व्यस्तता 2011 में कुछ अधिक होना भी उन कई वजहों में एक है।

2011 के नवम्बर महीने में यह सोचते हुए कि सामाजिक न्याय की दृष्टि से इस वर्ष को एक महत्वपूर्ण वर्ष माना जा सकता है। किंतु अनुमान के मुताबिक अभी तक जाति आधारित जनगणना का कार्य आरम्भ नहीं हो सका। यदि यह योजना एवं घोषणा के मुताबिक सितम्बरके प्रथम सम्ताह में शुरू होता तब सन् 1930 के बाद हाने वाली इस जाति आधारित जनगणता को सम्पन्न कराने का श्रेय यूपीए सरकार को जाता जो 62 प्रतिशत जनसंख्या का दावा करने वाले बहुसंख्यक ओबीसी समाज की लम्बित मांगें मानने जैसी होती और इसका भी फायदा यूपीए सरकार को कालांतर में मिलता।

केन्द्र सरकार के पूर्व घोषणा के अनुरूप जाति जनगणता का कार्य जून 2011 से सितम्बर 2011 के बीच करा लेने का था। लेकिन जाति जनगणना को लेकर कोई गम्भीर बयान केन्द्र सरकार से अब तक सामने नहीं आए है। केन्द्र सरकार का जाति जनगणना को भरसक टालने की दिशा में लिया जा सकता है।

सनद रहे कि जाति जनगणना को लेकर पिछले दिनों राष्ट्रीय स्तर पर बुद्धिजीवियों के बीच काफी बहसें हुई, सेमिनार आयोजित हुए, छोट शहरों से लेकर बड़े शहरों में संगोष्ठियां अयाजित की गई जिसके माध्यम से जातियों की गणना की जरूरत पर ठोस विचार आएं। यहां हमें इस पर विस्तार से जाने की आवश्यकता नहीं है।

पिछले दिनों 18 अगस्त 2011 को को उच्चतम न्यायालय द्वारा एक महत्वपूर्ण फैसला दिल्ली विश्वविद्यालय में छात्रों के दाखिले में आरक्षण पर आया है। इसे थोड़ा विस्तार से समझने की आवश्यकता है। मसला यह था कि दिल्ली विश्वविद्यालय में छात्रों के दाखिले में आरक्षण के प्रावधान के तहत ओबीसी छात्रों के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान है। लेकिन साथ ही साथ ओबीसी छात्रों के लिए आरक्षण सामान्य वर्ग के छात्रों के कट ऑफ मार्क्स से 10 प्रतिशत कम पर आधारित थे। साथ ही यह भी प्रावधान था कि उपरोक्त मानदण्डों का पूरा न कर पाने के बाद ओबीसी की रिक्त सीटें सामान्य वर्ग को सीानान्तरित कर दी जाएगी।

नतीजा यह था कि प्रत्येक वर्ष कट ऑफ मार्क्स पूरे न कर पाने के कारण ओबीसी की सीटें सामान्य वर्ग के खाते में चली जाती रही। पिछले वर्ष दिल्ली विश्वविद्यालय के 80 महाविद्यालयों में से 31 महाविद्यालयों में कुल 7420 ओबीसी की सीटें थी जिनमें से केवल 3396 सीटें ही भर पाई थी शेष 4024 सीटें सामान्य वर्ग के छात्रों के लिए पुनर्निधारित कर दी गई। सामान्य वर्ग कुल सीटें 11957 थी जो रिक्त सीटों के जुड़ने के बाद 16692 हो गई।

सामाजिक न्याय आंदोलन से जुड़े संगठन एवं कार्यकर्ताओं ने मामले को उच्च न्यायालय के समक्ष रखा। उच्च न्यायालय दिल्ली ने मामले पर सनवाई करते हुए ओबीसी छात्रों के लिए 10 प्रतिशत की छूट सामान्य वर्ग की पात्रता (प्रतिशत अंक) से निर्धारित करने के आदेश जारी किए। अर्थत यह 10 प्रतिशत की छूट कट ऑफ मार्क्स से नहीं होगी। (कटऑफ मार्क्स यानी सामान्य वर्ग के छात्रों में दाखिल हुए आखिरी छात्र का प्रतिशत अंक।)

उच्चतम न्यायालय के इस फेसले के खिलाफ श्री इन्द्रसेन, जो आई0आई0टी0 मद्रास के पूर्व निदेशक रह चुके हैं, ने उच्चतम न्यायालय में याचिका लगाई। कई राउण्ड सुनवाई होने के उपरांत अंततः उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय दिल्ली के आदेश को सही ठहराते हुए अपने आदेश निर्गत कर दिए।
यहां यह भी जानना महत्वपूर्ण है कि फेसले के पूर्व जून 2011 को दिल्ली विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार ने कॉलेजों को निर्देश जारी किए कि अगले आदेश तक ओबीसी की सीटें सामान्य वर्ग को हस्तांतरित न किए जाएं।

एक बड़ा फेसला 2011 का जिसे हमें स्वागत करना चाहिए। और हम स्वागत करते भी हैं। लेकिन स्वागत के साथ के साथ एक कड़वी सच्चाई हम कहना चाहेगें कि ओबीसी का बहुसंख्यक अभी भी अपने अधिकारों से अनभिज्ञ है, और यदि अनभिज्ञ नहीं है तो स्थितियों का मूक दर्शक है। दिल्ली विश्वविद्यालय का प्रशासनिक तंत्र क्या ओबीसी के अधिकारों के साथ पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाकर उसका अहित नहीं कर रहा था। राष्ट्र की संपदा और सुविधाओं के उपभोग का अधिकार सुनिश्चित करने का दायित्व जिनके हाथों में है उनके निर्णयों, उनकी सोच और उनके क्रियाकलापों को देखते हुए भी नजर अंदाज करना कोई ओबीसी जमात से सीखे। परिणामतः हमारी तमाम सुविधाओं को जिन्हें हमें प्राप्त होने चाहिए थे, वे नहीं हुए और उन्हें आंदोलनों के जरिए प्राप्त करने की कोशिश की जा रही है।

० ० ०

यह अनुतरित प्रश्न देश के सभी प्रशासनिक ओहदों पर बैठे हुक्कमरानों एवं देश की सभी राजनैतिक दलों के पदाधिकारियों से है कि समानता, न्याय, सामाजिक एकरूपता और भाई चारे पर संसार की सारी दलीलें देने के वावजूद क्यों नहीं सामाजिक एकरूपता दिखती है। असमानता को किसी स्केल से नहीं नापा जा सकता है। बावजूद इसके लोगों के बीच की असमानता को हम सभी खुली आंखों से नाप सकते हैं।

आर्थिक समानता की बात एक दिवास्वप्न की तरह है जो शायद ही मूर्त हो सके। छोटी से छोटी नौकरियों या काम के अवसर सामने आते ही उसके बंटवारे में होने वाले तमाम दांवपेंच और हथकण्डों का प्रयोग हम सभी इसी समाज में देखते हैं। यदि 21वीं सदी में हमें इन दांवपेंचों और हथकण्डों में खुलकर वर्गभेद, जातिभेद, परिवारवाद या अन्य पक्षपातपूर्ण कोने दिखतें हैं तब हम क्यों नहीं उम्मीद करें कि 121वीं सदी में भी यही हालात हमारे सामने होंगे। यह कहना कुछ लोगों को अप्रिय लग सकता है किंतु हम आह्वान करतें हैं अपने विवकेशील साथियों से कि विचार करें कि आज हैलोजन और न्योन लाईटों से जगमगाती दुनिया, तमाम उपभोग की वस्तुओं से अटे पड़े बाजार, विज्ञान और तकनीक की देन है। मनुष्य इसके लिए भरपुर उपभोग के लिए आतुर है। इसी आतुरता में वह आंखें मुंदकर अधिक से अधिक पैसे इकट्ठा करना चाहता है। धीरे धीरे वह एक ऐसी ऊंचाई पर पहुंच जाता है जहां वह यह सोचकर घबराता है कि उसकी जरा सी चूक उसे धड़ाम से नीचे गिरा सकता है। लिहाजा वह अपने बचे खाली वक्त में पुनः उस स्तम्भ की तलाश में जुट जाता है जहां से उसे सहारे या अवलम्बन की उम्मीद होती है। अपनी दुनिया में और आगे निकलने की कामना करता है। यहीं से शुरू होती है ईश्वरीय आलोक की तलाश, यज्ञों, अनुष्ठानों का आयोजन , मंदिरों के बाहर लटकने वाले हजारों छोटी बड़ी घंटियों का बांधना आदि। तमाम तकनीकि और वैज्ञानिक उपलब्धियों के बावजूद हमने देखा और पाया है कि 20वीं और 21वीं सदी में हाने वाले पूजा अनुष्ठानों में फर्क आया है।

ऐसे में सामाजिक न्याय जैसे शब्द और अवधारणओं का हश्र समुद्र में तैरने वाले उस बहुत बड़े जहाज की तरह ही होगा न जिसके पास न तो पर्याप्त इंधन है, न अधिक क्षमता वाला इंजन है और न ही सहयोग के लिए उठे हजारों हाथ हैं। मजबूरन किसी तरह रेंगता हुआ पार पहुंचने की जद्दोजहद में परेशान है। लोगों के बीच स्वार्थ और पृथकतावादी प्रवृति में वृद्धि हुई है।

हमारे एक कथाकार अग्रज हैं जयनंदन। करीबन 20 साल पहले किसी साहित्यिक रचना के सिलसिले में कहा था कवे एक ऐसा स्वप्न देखते हैं जहां एक विशाल गांव है और हजारों लोग बिना किसी धर्म के बिना किसी जाति के सुख पूर्वक रहते हैं। आखिर ऐसे स्वप्न क्यों आते हैं।

0—0—0

Blog : s

E-mail : aiobc.up@gmail.com